राजधानी में गँवार

प्रेम जनमेजय

राजधानी में गंवार

प्रेम जनमेजय

प्रेम जनमेजय

जन्म : 18 मार्च, 1949 - इलाहाबाद।

शिक्षा : एम.ए., एम. लिट्. (हिन्दी)।

'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी गद्य-साहित्य में व्यंग्य विषय पर शोध में संलग्न।

रचनाएं

व्यंग्य : राजधानी में गंवार।

आलोचना : प्रसाद के नाटकों में हास्य-व्यंग्य

सम्पादित : व्यंग्य : एक और एक। 'दूसरा दिविक', 'मुट्ठियों में बन्द आकार', 'समीकरण', 'श्रेष्ठ लघु कथाएं' संकलनों के रचनाकार।

सम्प्रति : कॉलेज ऑफ वोकेशनल स्टडीज के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक।

सही दिशा और चिंतन के अभाव में व्यंग्य अपनी सार्थकता खो देता है। वह मात्र हास्य का पर्याय बनकर रह जाता है। व्यंग्य को गम्भीर कर्म मानकर रचना करने वालों में प्रेम जनमेजय का नाम युवा-व्यंग्यकारों में विशिष्ट है। व्यंग्यकार के पहले व्यंग्य-संग्रह की ये रचनाएं इस बात की पुष्टि करती हैं कि व्यंग्य संघर्षशील आक्रोशजन्य चेतना का परिणाम है। इन रचनाओं में विषय और शिल्प का वैविध्य पाठकों को बांधने की प्रभावपूर्ण शक्ति रखता है।

दृष्टिकोण

व्यंग्य की सार्थकता को प्रत्येक वह साहित्यकार स्वीकार करता है, जिसका सजग संघर्षशील मस्तिष्क समकालीन सामाजिक विसंगतियों से विक्षुब्ध है। आज व्यंग्य साहित्यकार की आवश्यकता बन गया है। देश की व्यवस्था इतनी असंगत एवं तर्कशून्य है कि व्यंग्य से बचना कठिन है।

स्वतंत्रता से पूर्व भारत का सीधा संघर्ष प्रत्यक्ष शोषण करने वाली विदेशी शक्ति से था। तब तलवार भी उठती थी और वैचारिक संघर्ष भी होता था। उद्देश्य था, विदेशियों को अपनी धरती से भगाना। अपने देश में स्वच्छ, उन्मुक्त वायुमंडल का निर्माण करना जिसमें सही अर्थों में जिया जा सके। भारतेन्दु-युग के साहित्यकारों ने तब भी व्यंग्य का प्रयोग किया, परन्तु वह व्यंग्य अप्रत्यक्ष था।

देश स्वतंत्र हुआ और वायुमंडल एक और ढंग से विषैला हो गया। अपने ही लोग लूटने लगे। पूंजीवादी लोभी मनोवृत्ति के फलस्वरूप भ्रष्टाचार, उत्कोच, बेईमानी में उत्कट वृद्धि हुई। देश की प्रगति के नाम पर हजारों खद्दरधारी पदों की लोलुपता में देश की आर्थिक व्यवस्था को खोखला करने लगे। स्वार्थ ने सेवा का मार्ग रोक लिया। जिन्होंने देश की स्वतंत्रता के लिए एक-आध बार भी जेल जाने की औपचारिकता पूरी की थी, ब्याज-सहित अपना पारिश्रमिक मांगने लगे। अनेक कारखाने लगाए गए। कहा गया देश में समृद्धि आ रही है, परन्तु वस्तुत: पूंजीवाद की जड़ों में दृढ़ता आ रही थी। देश की पूंजी गलत हाथों में एकत्रित हो रही थी।

विसंगति-जन्य परिस्थितियों में सजग संघर्षशील साहित्यकार के विचार-तन्तु झनझना उठे। उसकी मुट्ठियां आक्रोश में भिंच गई। परन्तु वह किससे लड़ता सब तो अपने ही थे। उसका मोह भंग हुआ। उसे पता चला कि मिलावट करने वाले को दंड नहीं मिल सकता, क्योंकि उसकी ऊपर जान-पहचान है। पूंजीपतियों की पूंजी, निर्वाचित शासकों को डोरी में बांधकर बन्दर-नाच नचा रही है। अमीरी-गरीबी की खाई निरन्तर बढ़ रही है। उसका क्षोभ, विस्फोट की स्थिति तक जा पहुंचा। उसे एक ऐसी विधा की आवश्यकता अनुभव हुई जो उसके क्षोभ को पाठकों तक पहुंचा सके और उनमें विसंगतियों के विरुद्ध वैसा क्षोभ भर सके। व्यंग्य की आवश्यकता का खाका बना। व्यंग्य ने हिन्दी-साहित्य में, एक परम्परा के साथ पहले हास्य का आश्रय लेकर और फिर स्वतंत्र रूप में क्षिप्र-

गति के साथ प्रवेश किया।

मैं व्यंग्य को उसकी समसामयिकता, प्रहारक शक्ति, तीव्र संप्रेषणीयता और निहित जनवादी दृष्टिकोण के कारण सही अर्थों में प्रगतिशील साहित्य मानने का पक्षधर हूं। व्यंग्य जैसी साहित्यिक समसामायिकता 'संभवत: किसी अन्य विधा में नहीं है। व्यंग्य साहित्य से कुंठा को दूर कर उसे सशक्त एवं निरोध बनाता है। वह आक्रोश को दबाता नहीं, उसे प्रहारात्मक अभिव्यक्ति देता है। इस विधा में जन-सम्पर्क की जितनी शक्ति है उतनी अन्य किसी में नहीं। स्वतंत्रता के पश्चात उपन्यास, कहानी एवं कविता पर जो शिल्प हावी हुआ, उसने आम आदमी का संबंध साहित्य से क्षीण कर दिया। व्यंग्य इस दूरी को कम करता है। जनतंत्र में सरकार से प्रत्यक्ष लड़ने का एकमात्र साहित्यिक आधार यही व्यंग्य है।

साहित्य एक यात्रा है- सोद्देश्य यात्रा। इस यात्रा में अकेले चलने का दंभ व्यक्ति की भूल है। जीवन में आए विभिन्न व्यक्ति, क्षण और घटनाएं लेखक के चिंतन पर निरन्तर आक्रमण करती हैं। मेरी अब तक की यात्रा में, शुरू-यात्रा से डॉ. नरेन्द्र कोहली का जो सहयोग मिला है जिसे शब्द नहीं बांध सकते, वह स्मरणीय रहेगा। रमेश उपाध्याय और दिविक रमेश की मित्रता ने निरन्तर मुझे चैतन्य किया है, एक दिशा देने का प्रयत्न किया है। इसके अतिरिक्त सर्वश्री रवीन्द्रनाथ त्यागी, हरीश नवल, रमेश बत्तरा, सुरेन्द्र मनन, रमेश ठगेला के भी बहुमूल्य सहयोग का आभारी है।

प्रेम जनमेजय

बाऊजी - रामप्रकाश कुन्द्रा

और

माताजी – सत्या कुन्द्रा

को सादर

क्रम

मनुष्य और ठग	9
जनतंत्र की कथा	14
मंत्रीक्षेत्रे, कुरुक्षेत्रे	18
इंस्पेक्टर का तबादला	23
सत्य के पहलू	26
अहिंसा परमो धर्म:	29
कविते, तेरा क्या होगा?	33
साहित्यकारों का मजमा	36
एक प्रेम-पत्र	42
तू गाये जा	45
फ़िल्म और मेरी पत्नी	48
मंत्रीजी का कुत्ता	52
शुभचिन्तक	56
लेखकीय पीड़ा के पांच दिन	59
बच्चू भैया	62
राजधानी में गंवार	67
दाढ़ी क्यों बढ़ी?	77
हाय तेल! वाह तेल!	79
समीक्षा में क्रांतिकारी परिवर्तन	82

एक देशभक्त	85
सिर मुंड़ाते ओले	89
संपादक-स्तुति	92
और फिर...?	95
समुझै कवि की कविताई	99
फ़िल्मी मुहल्ला	103
लघु कथाएं	107
जलने की प्रथा	110
होने वाली पत्नी-नुकसान दस हजार का	113
स्वर्णाक्षरों की खोज	116
चरण-धूल	119
निबन्ध-पाठ की योजना	123
अधूरा शोध	126

मनुष्य और ठग

चार ठग विचार-विमर्श में डूबे हुए थे। बहुत दिनों से कोई 'शिकार' नहीं मिला था, इसलिए चिंतित भी थे। तभी सामने से एक मनुष्य आता दिखाई दिया। चारों ठग सतर्क हो गए। मनुष्य देखने में रूपवान और शक्तिशाली था। उसके चेहरे पर अद्‌भुत तेज झलक रहा था और होंठों पर प्रसन्नता खेल रही थी। वह गुनगुना भी रहा था। मस्ती में कभी आकाश की ओर और कभी प्रकृति की ओर देखता। मनुष्य आने वाले खतरे से अपरिचित, ठगों की ओर बढ़ता चला आ रहा था। उसके कंधे पर एक थैला लटका हुआ था जिसे उसने सावधानी से पकड़ा हुआ था। 'अवश्य ही इस थैले में कोई बहुमूल्य वस्तु होगी'- चारों ठगों ने सोचा, 'और मनुष्य भी कम सुन्दर शिकार नहीं है।' चारों एक योजना के अनुसार मनुष्य के मार्ग पर कुछ-कुछ दूरी पर बैठ गए।

पहला ठग

पहले ठग ने खादी के वस्त्र धारण किये और तकली पकड़कर उसे कातने की मुद्रा बनाकर मार्ग में बैठ गया। उसके चेहरे पर करुणा, दया, अहिंसा, विश्वमैत्री, शान्ति और मुसकान के भाव आ-जा रहे थे। मनुष्य जब समीप आया तो ठग ने एक भजन गाना भी आरम्भ कर दिया। मनुष्य उसके इस कार्य से प्रभावित होकर रुक गया। ठग ने कहा- "आओ भाई! कहो, इतनी धूप में कहां से आ रहे हो? बैठो।"

"धूप? कोई खास तो नहीं है।"

"आगे मिल जाएगी। लो, यह टोपी पहन लो। अरे, तुम्हारे तो वस्त्र भी बहुत मैले हो गए है," कहकर ठग ने बड़े प्यार से मनुष्य को टोपी पहनाई और उसके मना करने पर भी उसे खादी के वस्त्रों का जोड़ा पहना दिया तथा उसके बहुमूल्य वस्त्र अपने पास रख लिये।

"यह लाठी तुमने क्यों पकड़ी हुई है?" ठग ने मनुष्य की लाठी अपने हाथ में लेते हुए पूछा।

"मार्ग में किसी संकट का सामना करने के लिए। अपनी सुरक्षा के विचार से।" मनुष्य ने उत्तर दिया।

"न भाई, हिंसा बुरी बात है। हमें अहिंसा में विश्वास रखना चाहिए। सब ईश्वर के जीव हैं। किसी को मारना

हिंसा है। कोई यदि तुम्हारे एक गाल पर तमाचा मारे तो दूसरा भी आगे कर दो। लाओ, यह लाठी मुझे दे दो।" यह कहकर ठग ने मनुष्य से लाठी छीन ली और उसे तकली पकड़ा दी।

दूसरा ठग

दूसरे ठग ने गेरुए रंग के वस्त्र धारण किए, हाथ में कमण्डल पकड़ा, गले में रुद्राक्ष की माला पहनी, माथे पर तिलक लगाया और सुरक्षा के विचार से बगल में छुरी रख ली। उसके चेहरे पर क्रूरता और सौम्यता के भाव आवागमन कर रहे थे। उसने दूर से मनुष्य को आते देखा तो धूनी रमाई और आंखें मूंदकर ध्यान में स्थित हो गया।

मनुष्य जब समीप से गुजरा तो ठग ने गूंजती आवाज में पुकारा- "बच्चा, बाबा की उपेक्षा करके कहां जा रहा है?"

'क्षमा करना बाबा, आपकी आंखें मुंदी देखकर मैंने समझा आप ध्यानमग्न हैं अत: उचित नहीं समझा कि..."

"हैं...हैं...मूर्ख, बाबा मन की आंखों से सब देख लेते हैं। तू बाबा को धोखा नहीं दे सकता है।"

"बाबा, मुझे आवश्यक कार्य से जाना है, अत: शीघ्रता में हूं।"

"शीघ्रता मत कर, मूढ़! यह संसार जिसके पीछे तू भाग रहा है, नश्वर है। यह जो कुछ तुझे दिखाई दे रहा है, सब माया है। यह तेरा लक्ष्य नहीं है। दृश्यमान संसार असत्य है।"

"फिर सत्य क्या है, बाबा?"

" 'वह', जो दिखाई नहीं देता। जो निराकार, अलक्ष्य, अगोचर, अरूप, सच्चिदानन्द परब्रह्म है। तू उसे प्राप्त कर।"

"वह कैसे प्राप्त होगा, बाबा?"

"ज्ञान की आंखों से। इन बाह्य चक्षुओं से तुझे श्रम होता है। तू मोह-माया के भ्रम में फंसता है। बस उस एक निराकार का ध्यान धर। बाबा की बातों को अन्तिम मान। अपनी ओर से कुछ मत सोच। जा, तेरा भला होगा।"

यह कहकर दूसरे ठग ने 'मनुष्य' की सुन्दर आंखें फोड़ दीं और मस्तिष्क निकालकर अपने पास रख लिया।

और कहा, "अब अपने लक्ष्य की ओर बढ़, ज्ञानी। वह सर्वव्यापी तेरी रक्षा करेगा।"

मनुष्य आंखों और मस्तिष्क के अभाव में उस 'अलक्ष्य' और निराकार को प्राप्त करने के लिए डगमगाता हुआ बढ़ गया। थैला उसने कसकर पकड़ा हुआ था।

तीसरा ठग

तीसरे ठग ने राजकीय वस्त्र धारण किए, एक घोड़ा लिया, हाथ में चाबुक पकड़ा, कमर में तलवार लटकाई और मार्ग में खड़ा हो गया। वह बार-बार अपनी मूछों को मरोड़ रहा था। उसने दूर से मनुष्य को आते देखा तो मोड़ से मनुष्य के मार्ग में अड़ा दिया और स्वर कर्कश करने का प्रयत्न करने लगा।

मनुष्य आंखों और मस्तिष्क के अभाव में दिशाहीन डगमगाता हुआ- सा चल रहा था। वह राजा के घोड़े से आ टकराया। मनुष्य ने घबराकर पूछा "कौन हो, भाई?"

"तू कौन है और कहां जा रहा है?"

"मैं मनुष्य हूं और बाबा के आदेश पर ईश्वर-प्राप्ति के लिए जा रहा। हूं। और आप...?"

"हम यहां के राजा है और हमें ईश्वर ने तेरी भलाई के लिए भेजा है। हमें तू ईश्वर के समान शक्तिशाली समझ। तेरी सुरक्षा का भार अब हम पर है। हम तेरे हितों की रक्षा करेंगे।"

"मुझे क्या करना होगा, राजन्!"

"तुझे आज से मेरे प्रत्येक आदेश को स्वीकार करना होगा। मैं तेरे अच्छे-बुरे का न्याय करूंगा। जो मैं कहूं उसे सुनना होगा और समझना होगा। मैं ही तेरा पालन-पोषण करूंगा। मेरे विरोध में जाने का अभिप्राय राजद्रोह होगा और उसका दण्ड मृत्यु होगी।"

यह कहकर राजा ने मनुष्य की जीभ काट ली और घोड़े को ऐड़ लगाकर शिकार खेलने की मुद्रा में चल दिया।

चौथा ठग